प्रकाशनीय

भारत का सर्वोच्च न्यायालय

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार

आपराधिक अपील कं. 1384–1385/2009

रणवीर सिंह आदि .....अपीलार्थीगण

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य

.....प्रतिवादी

के साथ आपाराधिक अपील कं.700/2011

निर्णय

न्यायमूर्ति एम.एम. सूंदरेश

1. पुर्नस्थापन के लिए आवेदन प्रस्तुत के विलंब को क्षमा करने के आवेदन के साथ पुर्नस्थान के आवेदन को आपराधिक अपील कं. 700/2011 में स्वीकार की जाती है।

2. मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय खण्डपीठ ग्वालियर के द्वारा दोषसिद्धी और सजा दी गई जिसमें 2nd अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश शिवपुरी द्वारा दिए गए आजीवन कारावास को पुष्ट किया जबकि सात वर्ष के जैसे एक सी सजा को संशोधित किया जो कि हमारे समक्ष चुनौती के अधीन है।

अभियोजन के दृष्टि से प्रकरण का खुलासा

3. अपीलार्थीगण अपने पुरूषों के समूह के साथ और मृतक के मध्य पूर्व से शत्रुता थी। यह एक जल विवाद के बाद उत्पन्न हुआ क्योंकि अपीलार्थियों और ग्रामीणों ने कथित तौर पर मृतक द्वारा संपत्तियों की खरीदी उनके ग्राम में प्रवेश की सुविधा को नहीं सराहाया गया। घटना दिनांक 25.07.1992 को सुबह के 10:00 बजे घटित हुई। प्रथम सूचना आ.सा. 20, पुलिस अधिकारी द्वारा अभिलिखित की गई, जिसने एक और मृतक हुकुम सिंह के साथ भी अन्वेषण किया जो पश्चातवर्ती दिनांक 28.07.1992 को मर गया।

4. प्रदर्श पी–28 के अंतर्गत देहाती नालिसी जिसे प्रथम सूचना रिपोर्ट के रूप में दर्ज किया गया था, मृतक हुकुम सिंह ने कथित तौर पर पूर्व घटना के बारे में बयान दिया था। देहाती नालिसी में आगे कहा गया कि जब वह अन्य मृतक किशोरी काछी और चश्मदीद गवाह आ.सा. 12 हाकिम सिंह शौच के लिए गया था तब अभियुक्तगण हथियारों से सुसज्जित होकर जिसमें छड़ी और कुल्हाड़ी के साथ उन पर अंधाधुंध हमला कर दिया। उक्त सामान्य उद्देश्य के अनुकरण में उन तीनों को हमलावर अपनी जगह पर ले गये तब जैसे कि उसके परिवारजनों और निकट संबंधियों द्वारा देखा गया। यह एक भोगीराम और भग्गो बाई आ.सा. 18 द्वारा किये गये अनुरोध के बावजूद किया गया था। उन पर भी हमला किया गया लेकिन भोगीराम को रास्ते में ही फेक दिया गया। मृतक हुकुम सिंह के परिवारजनों में जिसमें उसकी बहु, पुत्रियां, बच्चू (आ.सा. 13) और सिरनाम काछी अपराध के समय के दौरान, घटना स्थल पर उपस्थित नहीं थे। शिकायत दर्ज नहीं करायी जा सकी क्योंकि मृतक हुकुम सिंह को जाने की अनुमति नहीं थी जबकि किशोरी मर गया था।

5. मृतक हुकुम सिंह द्वारा दिए गए कथन को आ.सा. 20 द्वारा घटना स्थल पर अभिलिखित किया गया था। वह दिनांक 28.07.1992 के पश्चात 3 दिन अस्पताल में रहने के बाद मर गया। यह ध्यान दिये जाने योग्य है कि न्यायिक मजिस्टेट के समक्ष या चिकित्सक की उपस्थिति में बयान दर्ज करने का कोई प्रयास नहीं किया गया। अभिलेख के परिसीलन से हम पाते है कि मृतक के अंगूठे के छाप देहाती नालिसी के बीच में चिपकायी गयी थी और इसके ऊपर शब्द लिखे गये है, इस प्रकार यह धारणा देती है कि यह सोच समझकर के था।

6. अपीलार्थी क्रमशः सरदार सिंह और भोलाराम को अन्य अभियुक्तों के साथ धारा–148, 302/149 और 324/149 भारतीय दण्ड विधान 1860 (एतमन् पश्चात् इसे भा.द.वि. से इंगित करेंगे।) के अंतर्गत दण्डनीय अपराधों से विचारणीय न्यायालय द्वारा दो व्यक्तियों की हत्या के लिए दोषसिद्ध किया गया।

यद्यपि उच्च न्यायालय ने मृतक किशोरी काछी की मृत्यु के लिए आजीवन कारावास की पुष्टि करते हुए को संशोधित कर दिया जिसमें मृतक हुकुम सिंह के लिए धारा–304 भाग–2 भा.द.वि. के अंतर्गत दण्डनीय है। वर्तमान कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान विचारण न्यायालय द्वारा दोषसिद्ध किए अभियुक्तों में से तीन की मृत्यु हो गयी जबकि उनमें से पांच ने अपनी सजा पूर्ण कर ली और इसलिए उन्हें रिहा कर दिया गया। अपीलार्थीगण ने नौं साल की सजा व्यतीत कर ली है।

7. विचारण न्यायालय के समक्ष अभियोजन पक्ष में 21 गवाहों का परीक्षण किया जिनमें से छः चश्मदीद गवाह थे। एक चश्मदीद गवाह कार्यवाहियों के लंबित रहने के दौरान मर गया और इसलिए गवाह के रूप में परीक्षण नहीं हो सका।

8. अब हम अभियोजन पक्ष के गवाहों के बयानों पर चर्चा करने के लिए आगे बढ़ते हैं।

<u>आ.सा. 1 :–</u>

9. यह गवाह मृतक हुकुम सिंह की पत्नी है। उसने अभियुक्तगणों को केवल न्यायालय में पहचाना था। स्वीकृत रूप से कोई परीक्षण पहचान परेड नहीं की गई थी। उसका अभिसाक्ष्य घटना के तीन साल बाद लिया गया। यद्यपि उसने अभिकथन किया कि वह एक चश्मदीद गवाह थी लेकिन यह स्पष्ट रूप से मृतक हुकुम सिंह की देहाती नालिसी के विपरीत था। उसने अभिसाक्ष्य में यह भी कहा है कि कुछ अन्य लोग थे जो आरोपीगणों को हमला जारी रखने के लिए उकसाते थे। उसका यह साक्ष्य था कि अभियुक्त मृतक और भोगीराम को अपनी जगह पर ले गया। आगे यह अभिसाक्ष्य भी दिया गया है कि उसने अभियुक्त के नाम के बारे में नहीं बताया था और इसलिए वह किसी को भी उनके नाम से नहीं जानती थी। यह उसका आगे का साक्ष्य है कि न्यायालय में उपस्थित अभियुक्तगणों के नाम नहीं बताये जा सकते है। उसने स्वीकार किया है कि

दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा–161 (एतस्मिनपश्चात् द.प्र.सं. से इंगित किया जायेगा) के अंतर्गत दिए गए बयान और उसके अभिसाक्ष्य के बीच काफी सारा विरोधाभास है। उसका इस आशय का एक कथन कि गांव का चौकीदार उपस्थित था लेकिन उसे पुलिस से घटना की सूचना देने से भी प्रवृत कर दिया। दोनों मृतक और भोगीराम अचेत अवस्था में थें। हमले के समय अभियुक्त के समूह से संबंधित 60 से 70 व्यक्ति मौजूद थे।

10. आ.सा. 1 ने स्पष्ट रूप से कथन किया है कि आ.सा 13 बच्चू अन्य के साथ पुलिस कर्मचारियों को घटना की सूचना देने रात के समय के दौरान देने चला गया। वह उन्हें घटना स्थल पर वापस लेकर आया। यकिनन वह इस आशय के कथन से प्रवृत हुई कि यह कहना सही नहीं है कि पांचों पीड़ित अचेत अवस्था में थे और किशोरी को छोड़कर उन्होंने उनके कथन दिये।

<u>आ.सा. 4</u>

11. यहां तक इस गवाह ने भी अभियुक्त को उनके चेहरों से केवल न्यायालय में पहचाना है जबकि वह उनके नाम नहीं जानती थी। वह एक भी अभियुक्त को यहां तक पहचान नहीं सकी जिसको उसे पहचान के लिए कहा गया था। इसी तरह आ.सा. 1, उनकी उपस्थिति भी मृतक हुकुम सिंह ने भी दर्ज नहीं कराई थी। चश्मदीद गवाह के रूप में दांवा करते हुए, उसने घटना बताई। उसने कुछ तथ्यों पर भरोसा करके अभियोजन वृतांत में भी सुधार किया जो कि मौजूद नहीं थे। यद्यपि, उसने कथन किया है कि मृतक अभियुक्त के दरवाजे पर पड़ा हुआ पाया गया था, जब पुलिस दल आया। इस आशय का भी एक कथन किया है कि दोनों मृतक और घायल अचेत अवस्था में पड़ा था। उसने स्पष्ट रूप से कहा है कि पुलिस दल 26.07.1992 को सुबह के 6 से 7 बजे के बीच आ गया था। आ.सा. 4 का उपरोक्त अभिसाक्ष्य स्वाभाविक रूप से मृतक हुकुम सिंह के मृत्यु कालिन कथन से शुरू होने वाले अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किये गये मामले से विपरीत है।

<u>आ.सा. 12</u>

12. देहाती नालिसी के अनुसार यह साक्षी भी चश्मदीद साक्षी है। वह एक घायल साक्षी भी है। अजीब बात है कि, उसने घटना की कोई प्राथमिकी दर्ज नहीं करायी यद्यपि उसका कथन को उसी तरह दर्ज किया गया है जिस प्रकार अभियोजन का वृतांत है। उसने एक से अधिक अवसरों पर कथन किया है कि उसका कथन पुलिस द्वारा दर्ज नहीं किया और कि वह न्यायालय में पहली बार अभिसाक्ष्य देने आया है। उसने घटना को घटना दिनांक से उसके अभिसाक्ष्य तक उसने घटना के बारे में किसी और को भी नहीं बताया। यह साक्षी दोबारा स्पष्ट कथन करता है कि घटना दिनांक को अभियुक्त पक्ष की ओर से लगभग 50 से 100 और व्यक्ति थे। सभी लोग हमले की घटना में संलिप्त थे। वह उनमें से किसी भी को स्पष्ट रूप में पहचान नहीं सका जबकि उपरोक्त व्यक्तियों के बीच एक विशिष्ट प्रत्यक्ष कार्य का श्रेय देते हुए, वह किसी को भी स्पष्ट रूप से पहचान नहीं सका। संपूर्ण भीड़ ने मृतक पर हमला कर दिया। उसने पुलिस को नहीं बताया कि नामित अभियुक्तों ने उस पर हमला करने की कोशिश की। यह ध्यान देना दिलचस्प है कि इस साक्षी ने अन्य साक्षियों की उपस्थिति के बारे में नहीं बताया। इसके आगे, कथित तौर पर उसने इस घटना को एक फरलॉग की दूरी से देखा था, जो कि लगभग 200 मीटर पर है।

13. उपरोक्त वृतांत से आ.सा. 12 से दर्ज किए गए साक्ष्य पर विश्वास नहीं कर सकता है जैसे कि दो अन्य साक्षियों की विवेचना की गई है। यह भी स्पष्ट है कि यहां तक इस साक्षी कई सारे लोगों के बारे में कहता है जो मृतक पर हमला करने के लिए उपस्थित हुए थे।

<u>आ.सा. 13</u>

14. यह साक्षी घटना का चश्मदीद साक्षी होने का भी दांवा करता है। उसके अनुसार, जब घटना घटित हुई तो उसने खुद को छिपा लिया। उसके बाद, वह पुलिस थाना गया और पुलिस अधीक्षक से मिला और शिकायत दर्ज करायी। वह

नक्शा मौके प्रदर्श पी. 16 और गिरफ्तारी पंचनामा प्रदर्श पी. 19 का भी साक्षी है। उसके मुख्य परीक्षण के दौरान भी उसने अभिसाक्ष्य दिया कि वह पुलिस वालों के साथ लगभग दोपहर के 3 से 4 बजे घटना स्थल पर वापस आ गया था, जो कि अभियोजन मामले के विरूद्ध कथन है। उसके मुख्य परीक्षण में, उसने स्वीकार किया है कि उसने जो पूरी तरह से बयान दिया वह पूर्व में अभिलेखित किये गये उसके धारा 161 द.प्र.सं. के बयान प्रदर्श डी.4 में पाया नहीं गया। पुलिस अधीक्षक के निर्देश के अनुसार वह थाना प्रभारी से मिला। यह उसका विशिष्ट प्रकरण है कि पुलिस थाने में कथन दर्ज किये गये थे।

15. जब पुलिस दल घटना स्थल पर पहुंचा तो इस साक्षी ने मृतक को घायल दोनों को अचेत अवस्था में पाया। घायल साक्षी और मृतक को कथन सांध्य 5 बजे अस्पताल में दर्ज किया गया।

16. यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस साक्षी का साक्ष्य अभियोजन पक्ष के मामले पर हमला करता है, इस साक्ष्य के साथ तीन प्राथमिकी है।

<u>आ.सा. 18</u>

17. आ.सा. 18 मृतकों में से एक किशोरी की पत्नी है। अन्यों की तरह, उसने भी एक चश्मदीद साक्षी होने का दांवा किया है। घटना के बाद वह पुलिस थाने गई और निशानी अंगुठा लगाते हुए प्राथमिकी दर्ज करायी। उसके साथ तीन व्यक्ति जिसमें उसका देवर भी गये थे। वह भी अभियुक्त का नाम नहीं जानती थी।

18. एक बार फिर उपरोक्त कथन भिन्न समय पर कई सारी प्राथमिकी के तथ्य को दोबारा दोहराते है जिससे यह निष्कर्ष निकलता है कि उनमें से एक पर अधिकारिक रूप से भरोसा रखना उचित नहीं है।

<u>आ.सा. 20</u>

19. जांच अधिकारी को आ.सा. 20 के रूप में वर्गीकृत किया गया है। उसकी भूमिका महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि उसने ही मृतक से देहाती नालिसी को दर्ज

किया है और इसको प्राथमिकी में परिवर्तित किया है। वह एक पूरी तरह से अलग संस्करण प्रस्तुत करता है। मुख्य परीक्षण में वह कहता है कि उसने किसी अज्ञात व्यक्ति का फोन आया था। उसने अस्पताल में मृतक हुकुम सिंह का कथन भी दर्ज किया है लेकिन को भी इसका परिणाम नहीं जानता। यद्यपि उसने कथन किया था कि उसने आ.सा. 12 (हाकिम सिंह) का कथन भी दर्ज किया, ऐसा नहीं हुआ जैसा कि उक्त व्यक्ति ने सही तरीके से अभिकथन किया जिसने न्यायालय के समक्ष प्रथम बार अभिसाक्ष्य दिया। प्रथम सूचना प्रतिवेदन के विरूद्ध उसने कहा है कि पीड़ित परिवार के सदस्य भी मौजूद थे। यद्यपि उसने कथित रूप से हुकुम सिंह का कथन, आ.सा. 12 (हाकिम सिंह), भोगिराम और आ.सा. 18 (भग्गो बाई), दर्ज किये है, मृतक हुकुम सिंह उनसे संबंधित कथन को छोड़कर उसने दिनांक और समय का उल्लेख नहीं किया जो कि अजीब लगता है, इस तर्क को विश्वास दिलाता है कि या तो वे एक अलग समय पर दर्ज किये गये है या हुकुम सिंह द्वारा कोई कथन नहीं दिया गया। उसने एक बार यह कहते हुए खुद का खण्डन किया कि की उसने घटना स्थल पर हुकुम सिंह का कथन दर्ज नहीं किया जबकि इस तथ्य को अभिस्वीकृति देते हुए कि आ.सा. 12 (हाकिम सिंह) और भोगीराम के कथनों को उसके द्वारा नहीं लिया गया। एक और कथन दिया गया है कि उसे मौखिक आदेश दिया गया था।

20. एक अन्वेषण अधिकारी के रूप में इस साक्षी से सत्य बताने की अपेक्षा की जाती थी। हालांकि अन्वेषण अधिकारी की रिपोर्ट एक राय का गठन करेगी, लेकिन अभियोजन पक्ष का मामला यह है कि उसने ही प्रथम सूचना रिपोर्ट के रूप में मृतक का कथन दर्ज किया था, एक बहुत ही गंभीर संदेह पैदा करता है। यह स्पष्ट है कि उसका साक्ष्य न केवल विरोधाभाषी है बल्कि विनाशकारी भी है।

21. अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य पर चर्चा करने के बाद, अब हम विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के दृष्टिकोण पर विचार करेंगे।

न्यायालयों के निर्णय

22. दोनों न्यायालयों ने अभियोजन पक्ष के साक्षियों पर बहुत अधिक भरोसा किया है। चश्मदीद साक्षियों के कथनों को न्यायालयों का समर्थन मिला। देहाती नालिसी में मृतक के कथन पर भी बहुत भरोसा किया गया था। परंतु विरोधाभासों पर उचित ध्यान नहीं दिया गया। घटना के संबंध में साक्षियों के कथनों की एक दूसरे से पुष्टि की गई थी। यह पता चलने पर की दो हत्यायें हुई थी, अपीलीर्थियों को दोषी ठहराकर एक अंतिम निष्कर्ष पर पहुंचा गया।

अपीलार्थियों के निवेदन

23. अपीलार्थियों की ओर से उपस्थित हो रहे विद्वान अधिवक्ता ने दी गई लिखित बहसों पर विश्वास करते हुए कहा की अभियोजन पक्ष के वृतांत के अनुसार तीन अलग–अलग प्रथम सूचना रिपोर्ट है। अभियोजन पक्ष के साक्षियों के कथनों में विसंगितियां या तो स्व–विरोधाभासी है या एक दूसरे के खिलाफ है।

24. किसी भी साक्षी ने देहाती नालिसी के दर्ज होने के बारे में बात नहीं की है जैसा की आ.सा.20 द्वारा अभिकथन किया गया है। मृतक हुकुम सिंह की हालत अचेतन की थी। प्रदर्श पी. 28 में उपयोग की गई भाषा, कानूनी रूप से प्रशिक्षित मस्तिष्क को इंगित करता है। मृतक हुकुम सिंह का निशानी अंगुठा साबित नहीं हुआ था और इसकी नियुक्ति एक गंभीर संदेह पैदा करती है। आ.सा. 20 विभिन्न मामलों में खुद का खण्डन करता है। उसने उस व्यक्ति का नाम नहीं बताया जिसने सूचना दी थी। इस प्रतिवेदन का पहले का वृतांत को किसी उद्देश्य के तहत दबा दिया गया था।

25. आ.सा. 12 के परीक्षण न करने के लिए आत्यन्तिक रूप से कोई स्पष्टीकरण नहीं है जिसे प्रदर्श पी. 28 में चश्मदीद साक्षी के रूप में दर्शाया गया था। लगभग 50 से 100 से अधिक लोग उपस्थित थे और इसमें शामिल थे। भा.

द.सं. की धारा 149 के तहत आरोप नहीं लगाया गया है क्योंकि अन्य व्यक्तियों के अंकों को शामिल नहीं करने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं था।

26. उपरोक्त तर्कों को साबित करने के लिए, विद्वान अधिवक्ता ने इस न्यायालय के निम्नलिखित निर्णय पर भरोसा रखा है

- '' चरण सिंह और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2004) 4 एस.सी.सी. 205
- नजाभाई देसुरभाई वाघ बनाम वलेराभाई डेगनभाई वाघ और अन्य, (2017) 3 एससी 261
- बालमुकुंद शर्मा बनाम बिहार राज्य, (2019) 5 एस.सी.सी. 469
- व्यास राम बनाम बिहार राज्य, (2013) 12 एस.सी.सी 349
- अकबर शेख और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2009) 7 एस.सी.सी. 415,
- नागरजीत अहिर बनाम बिहार राज्य, (2005) 10 एस.सी.सी. 369
- शेरी और अन्य बनाम उत्तर प्रदेष राज्य, 1991 एस.सी.सी. (सी.आर.आई.) 1059, (1991) पूरक (2) एस.सी.सी. 437
- मूसा खान बनाम महाराष्ट्र राज्य, (1977) 1 एससीसी 733
- मुन्ना चंदा बनाम असम राज्य (2006) 3 एस.सी.सी. 752 (पैरा 12)
- देबाशीष डाव और अन्य बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, (2010) 9 एस.सी.सी 111 (पैरा 25)
- मनोज कुमार शर्मा और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य और एक अन्य, (2016) 9 एस.सी.सी. 1 (पैराग्राफ 30) य
- जय प्रकाश सिंह बनाम बिहार राज्य और एक अन्य (2012) 4 एस.सी.सी 379 (पैराग्राफ 12)
- राजीवन और अन्य बनाम केरल राज्य, (2003) 3 एस.सी.सी 355 (पैरा 12, 13)

- थुलिया काली बनाम तमिलनाडु राज्य, (1972) 3 एस.सी.सी 393 (पैरा 12)
- मुख्तियार अहमद अंसारी बनाम राज्य (एन.सी.टी. दिल्ली), 2005 5 एस.सी. सी. 258
- राजा राम बनाम राजस्थान राज्य, 2005 एस.सी.सी (सी.आर.आई.) एससीसी 272

प्रतिवादी के निवेदन

27. राज्य की ओर से प्रस्तुत हो रहे विद्वान अधिवक्ता ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि कथित तौर पर तीन प्रथम सूचना रिपोर्ट थी निवेदन किया कि दो घायल साक्षियों ने घटना के बारे में बात की है जिसमें से एक प्रथम सूचना रिपोर्ट का लेखक था। विरोधाभास मामूली प्रकृति के है और इसलिए इनसे बचना चाहिए।

28. मृतक हुकुम सिंह ने आ.सा. 20 के समक्ष एक कथन किया है जिसकों मृत्यु कालिन कथन के जैसा माना जाना चाहिए। दोनों न्यायालयों ने समवर्ती रूप से पाया कि अपीलार्थीगण ने अपराध कारित किया और इसलिए इस न्यायालय द्वारा साक्ष्य को पुनः मूल्यांकन करने की आवश्यकता नहीं है।

चर्चा :–

अन्वेषण अधिकारी की भूमिका :–

29. हमने अभियोजन साक्षियों द्वारा दिये गये कथनों को पहले से ही विचार कर लिया है। संक्षेप में हम पाते है कि साक्षियों ने तीन प्रथम सूचना प्रतिवेदनों के बारे में बताया है। यहां तक की मृतक हुकुम सिंह के कथन को दर्ज करने के बाद आ.सा. 20 अन्वेषण अधिकारी बहुत स्पष्ट नहीं था। विसंगति उस स्थान तक भी फैली हुई है जहां कथन दर्ज किये जाने पर सब मिल गया था। एक अन्वेषण अधिकारी से यह आशा की जाती है कि वह निष्पक्ष रूप से, भेदभाव रहित कार्य करे और लोक सेवक की तरह काम करने की आवश्यकता है।

उसका उद्देश्य सत्य का पता करना है। अन्य गवाहों द्वारा दिये गये कथनों को छुपाने से वह प्रकरण के अंदर तक जाते है। एक स्पष्ट तस्वीर को नहीं जानता और इसलिए सभी अपीलार्थियों तक फायदा जाता है।

हम इस न्यायालय के मध्य प्रदेश राज्य बनाम रतन सिंह और अन्य (2020) 2012 एस.सी.सी. 630 के निर्णय पर भरोसा रखना चाहते है :–

''8 जैसे कि इस न्यायालय द्वारा अमित भाई अनिल चंद्र शाह बनाम सी.बी. आई. (2013) 6 एस.सी.सी 348:– (2014) 1 एस.सी.सी. (क्रीम) 309 में जोर दिया गया केवल शुरूआत में या संज्ञेय अपराध कारित करने के संबंध में प्रथम सूचना रिपोर्ट धारा–154 की जरूरतों को संतुष्ट करती है एवं परिणामें स्वरूप यहां दूसरी एफ.आई.आर. नहीं हो सकती है। अन्यथा ऐसी सूचना को द्वितीय एफ.आई.आर कहना बेतुका या हास्यास्पद तर्क है। सुब्रहमण्यम विरूद्ध तमिलनाडु राज्य (2009) 14 एस.सी.सी. 415 :– (2010) 1 एस.सी.सी. (क्रीम) 1392, इस न्यायालय ने पाया कि गवाहों के कथनों के दर्ज करने के बाद एफ. आई.आर. प्रस्तुत की जाती है तो ऐसी द्वितीय सूचना साक्ष्य में आग्रह होगी। इसके अलावा नालाभोतु रमल्लू बनाम आंध्रप्रदेश राज्य (2014) 12 एस.सी.सी. 261:–(2014) 6 एस.सी.सी. (क्रिमनल) 673, न्यायालय का यह मत था कि घायल साक्षियों के बयानों को पहले जानकारी के रूप में न लेना अभियोजन पक्ष के वृतांत पर संदेह प्रकट करता है।

9. इस प्रकार न केवल इस मामले में जांच के आधार के रूप में ली गई प्राथमिकी (जो अस्पष्ट रही) दर्ज करने में देरी हुई बल्कि पुलिस द्वारा प्राप्त वास्तविक पहली जानकारी को जानबूझकर दबा दिया गया। यह कारक मिलकर अभियोजन पक्ष के कथन की विश्वसनीयता पर गंभीर संदेह पैदा करते है और हमें इस निष्कर्ष पर लें जाते है कि अभियोजन पक्ष के लिए एक मामला बनाने और अधिक से अधिक व्यक्तियों को आरोपी बनाने को संभव प्रयास किया गया है।

10. इसके अतिरिक्त, घटना के तथाकथित चश्मदीद साक्षियों ने विभिन्न स्थानों को अपराध घटना स्थल के रूप में वर्णित किया है। कोई भी चश्मदीद साक्षी घटना स्थल का जहां तक संबंध है के बारे में एकरूप नहीं है। इसका मतलब है कि प्रत्येक चश्मदीद गवाह ने विभिन्न जगहों से घटना और विभिन्न तरीके से उसका घटित होने को तथाकथित रूप से जरूर देखा होगा। मूल प्राथमिकी को दबाने के साथ चश्मदीद साक्षियों के घटना स्थल के विभिन्न और विभिन्न कहानियां को प्रकटीकरण करने तथाकथित चश्मदीद साक्षियों को वृतांत विरोधाभाषी हो जाते है जिससे अभियोजन वास्तविक घटना को छुपाना चाहता था और छिपाना चाह गया है और वास्तविक दोषियों की दोषसिद्धियों को दबाना चाहता था। अभियोजन की उत्पत्ति और उत्पति के मामले में स्पष्ट रूप से दबा दिया गया है।

30. अरविंद कुमार उर्फ नैमीचंद बनाम राजस्थान राज्य 2021 एस.सी.सी ऑनलाइन एस.सी. 1099 : 2021 (14) स्केल 6

<u>निष्पक्ष, दोषपूर्ण, आभासी अन्वेषण</u>

40. एक अन्वेषण अधिकारी का एक लोक सेवक होने के नाते निष्पक्ष अन्वेषण करने की प्रत्याशा की जाती है। ऐसा करते हुए उससे प्रत्याशा की जाती है कि सही निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उसे उपलब्ध सामग्री में से देखना होता है। वह अपराध से इस तरह संलिप्त होता है जैसे कोई अपराधी। यह वो अपराध है जिसकी वह अन्वेषण करता है। जब कभी मृत्यु घटित होती है तब एक अन्वेषण अधिकारी से प्रत्याशा की जाती है वह सारे पहलुओं को इकट्ठा करे और इस प्रक्रिया में हमेशा यह ध्यान रखे कि क्या अपराध धारा–299 भा.द.सं. या धारा–302 भा.द.सं. के अंतर्गत आता है। दूसरे शब्दों में यह उसकी प्राथमिक कर्तव्य है कि संतुष्ट हो जाये कि प्रकरण हत्या की श्रेणी में न आने वाले मानव वध के अंतर्गत आयेगा न कि मृत्यु। जब यहां पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है तो वह भा.द.सं. की धारा–307 के अंतर्गत दण्डनीय अपराध

के लिए मामला तैयार करने में अति उत्साही नहीं होगा। हमारा मानना है कि अन्वेषण अधिकारी के दिमाग में एक लचीले बदलाव की आवश्यकता है। आखिरकार ऐसा अधिकारी न्यायालय का भी अधिकारी होता है और उसका कर्तव्य है कि सत्य का पता लगाये और न्यायालय को सही निष्कर्ष लेने में मदद करे। वह किसी भी पक्ष को नहीं जानता चाहे पीड़ित हो या अपराधी लेकिन कानून द्वारा केवल निर्देशित किया जायेगा और अपने अन्वेषण में निष्पक्षता बनाये रखेगा।

41. एक दोषपूर्ण अन्वेषण और एक सोची–समक्षी और जान–बूझकर की गई कार्यवाही या निष्क्रियता के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। एक दोषपूर्ण अन्वेषण स्वयं आरोपी के लाभ के लिए सुनिश्चित नहीं होगी। जब तक कि यह अभियोजन के मौलिक होने के मामले की जड़ में नहीं जाती है। एक दोषपूर्ण जांच से निपटने के दौरान इस न्यायालय से आशा की जाती है कि उपलब्ध साक्ष्य को परिवर्तित करें और सत्य का प्रत्येक प्रकरण के तथ्यों पर पता करें कि प्रत्येक प्रकरण सत्य की तरफ यात्रा करता है। अभियोजन पक्ष या अदालत द्वारा कोई पांडित्यपूर्ण दृष्टिकोण नहीं होगा क्योंकि एक मामले में नैतिकता के बजाय कानून का एक तत्व शामिल है।

XXX XXX XXX

44. हम निष्पक्ष जांच के लिए उपरोक्त सिद्धांत को निम्नलिखित निर्णय कुमार बनाम राज्य (2018) 7 एस.सी.सी 536 के द्वारा दोहरायेंगे :–

27. जिस तरीके से उन्होंने प्रकरण को संभाला है अन्वेषण प्राधिकरण का कृत्य जिसमें कार्यवाही की निंदा की जानी चाहिए। उच्च न्यायालय ने इस पहलू पर सही तरीके से ध्यान दिया कि पुलिस अधिकारियों ने गिरफ्तारी को विफल कर दिया है। यद्यपि प्रभु बनाम किंग एमप्रर (प्रभु बनाम किंग एमप्रर ए.आई.आर 1944 पी.सी. 73) में प्रतिपादित किया गया किये गये तर्क से वाकिफ है, जिसमें न्यायालय ने यह अभिलिखित निर्धारित किया था गिरफ्तारी की अनमिततायें और

अवैधानिकता अपराध की गंभीरता को प्रभावित नहीं करेंगे यदि इस तरह किसी ठोस साक्ष्य से सिद्ध हो जाता है। अभी तक हस्तगत प्रकरण में ऐसी अनमितता से अन्वेषण प्राधिकारी की अनिच्छा जाहिर होती है जो कि तथ्यों के छुपाव के लिए जिम्मेदार है।

28. आपराधिक न्याय निंदा से ऊपर होना चाहिए। यह अप्रासांगिक है कि झूठ साक्षियों के कथन में है या आरोपी के अपराध में। अन्वेषण प्राधिकरण की जिम्मेदारी है कि वह अन्वेषण निष्पक्ष तरीके से करे और सत्य को बाहर लाये। दोहराव की कीमत पर में प्राधिकरण को याद दिलाना चाहता हूँ कि वह अन्वेषण को निष्पक्ष भाव से लें बिना किसी अंतिम परिणाम से संबंधित होकर। वर्तमान हस्तगत मामले में जो हुआ उसके प्रति हम अपनी आंखे बंद नहीं कर सकते। अपराध या साक्ष्य की प्रबल अनुनय की परवाह किये बिना जिस पहलू में पुलिस ने तथ्यों को दबाने के लिए सक्रिय रूप से साठ–गाठ की है, उसे नजर अंदाज या अनदेखा नहीं किया जा सकता।

45. एक निष्पक्ष अन्वेषण आभाषी नहीं हो जायेगा जब यहां छुपाव सम्मिलित है। उद्देश्य को दबाते हुए छति और अन्य विद्यमान कारक आरोप के सुधार और परिवर्तन के आशय को प्रभावित नहीं करेगा चाहें ऐसी जांच को गलत बता दिया जाये। यदि न्यायालय अभियोजन प्रकरण की नींव को गलत पाता है और निष्पक्षता के सिद्धांत को पुष्ठ नहीं कर पाता तो अभियोजन का उक्त प्रकरण आधारों पर असफल हो जाता है जब तक कि यहां सजा देने के लिए निष्कर्ष पर अकाट्य साक्ष्य के आधार पर आता या अन्य आरोप पर आता है।

XXX XXX XXX

<u>फाल्सस इन यूनो फाल्सस इन आम्निबस</u>

48. यह सिद्धांत की जब कोई साक्षी झूठ बोलता है तो साक्ष्य को पूरी तरह छोड़ना पड़ता इसकी प्रभावशीलता कठोर रूप से हमारे देश में न्याय शास्त्र में नहीं है। अनाज से भूसी को अलग करने का सिद्धांत लागू करना पड़ता

है। यद्यपि जब साक्ष्य अविभाज्य है और इस तरह का प्रयास या तो असंभव होगा या साक्ष्य को अस्वीकार बना देगा तो स्वाभाविक परिणाम टालना होगा। उक्त सिद्धांत ने वैधानिक कानून का दर्जा नहीं लिया है लेकिन सावधानी के नियम के रूप में जारी है। किसी दिये गये प्रकरण में विसंगति की प्रकृति को देखना होगा। जब विसंगतिया काफी प्राथमिक है जो किसी साक्षी कि विश्वसनीयता को हिला सकती है और न्यायालय के मस्तिष्क में इस निष्कर्ष की ओर बढ़ावा देती है कि न तो उसे अलग करना संभव है न ही उस पर भरोसा यह उक्त न्यायालय के लिए है कि या तो स्वीकार करे या निरस्त कर दे।

49. विधि के उक्त सिद्धांत को इस न्यायालय द्वारा निपटान किया है इस न्यायालय के आनंद रामचंद्र चोगुले बनाम सिदराई लक्ष्मण चौगला (2019) 8 एस.सी.सी. 50 :–

9. हमने संबंधित निवेदनों पर विचार किया और अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री का अवलोकन किया है। पक्षकारों के बीच संबंध और भूमि विवाद का अस्तित्व जिसके बारे में एक दीवानी मुकदमा भी लंबित था, निर्विवाद तथ्य है। यह तथ्य की मौखिक द्वंद के बाद पक्षकारों के बीच हाथापाई हुई और चोटों में समाप्त हा गई यह दो न्यायालय द्वारा तथ्यों के समांतर रूप से तथ्य का निष्कर्ष है। यह तथ्य की आरोपी ने भी उसी घटना के संबंध में एक प्राथमिकी दर्ज करायी थी जो आ.सा. 19 और 22 के साक्ष्य से स्थापित हुई जिसने स्वीकार्य किया है प्रतिवादीगण– अभियुक्त ने भी बी.आर.पी.एस. अपराध क्रं. 79/02 चिन्हित प्रदर्श डी–10 द्वारा दर्ज करायी जिसका अन्वेषण उनके द्वारा नहीं किया गया। इसी प्रकार आ.सा. 11 पुलिस कॉन्सटेबल ने कथन किया है कि दो अपराधियों को जिला अस्पताल बेलगम में भर्ती कराया था और उसे निगरानी ड्यूटी पर पदस्थ किया गया। घटना साक्ष्य 2002 की है और प्रतिवादीगण, अपराधी एक और दो को 11.06.2002 को उन्मोचित कर दिया गया उनकी चोटों की रिपोर्ट अभियोजन

द्वारा अभिलेख पर प्रस्तुत नहीं की और न ही इस संबंध में कोई स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया है।

10. सभी उचित संदेह से परे आरोपो के साबित करने का भार अभियोजन पर है। इसके विपरीत आरोपी को केवल अभियोजन के मामले और उसके बचाव की संभावना के बारे में संदेह पैदा करना है। एक आरोपी को अपने बचाव को सभी उचित संदेह से परे स्थापित करने या साबित करने की आवश्यकता नहीं है जैसा कि अभियोजन को करना पड़ता है। यदि अभियुक्त यह बचाव लेता है जो कि असंभव है और ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसे बचाव कि सहयोग में यहां कुछ सामग्री है तो अभियुक्त को आगे किसी भी चीज को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। संदेह का लाभ तब तक मिलना चाहिए जब तक कि अभियोजन पक्ष अपने मामले को सभी उचित संदेह से परे साबित करने में समर्थ न हो।

31. आ.सा. 20 वह है जिसने कथन दर्ज किये है। की गई चर्चा पर, यह अत्यधिक संदिग्ध है कि क्या मृतक कथन देने के लिए पर्याप्त होश में होगा विशेष रूप से उसे लगे चोटों के आलोक में। यहां केवल मात्र कटे हुए घाव नहीं है बल्कि लगातार खुन भी जरूर बहा है जो कि सामान्यतः होता है जैसे कि प्रकरण घटना के एक दिन बाद पंजीकृत हुआ। इस पहलू पर साक्षियों के कथन एक दूसरे के विपरीत है। इसके अलावा जैसे कि अपीलार्थीगण के वकील द्वारा सही ढंग से प्रस्तुत किया गया है, अभिलेखों के अवलोकन पर हम पाते है कि निशानी अंगुठा के ऊपर लेखन था जो प्रदर्श पी. 28 के तहत किया गया। यह अजीब है क्योंकि निशानी अंगुठा आमतौर पर कथन का अनुसरण करते है : इसे कथन के समापन पर जगह ढूंढ़नी होती है। हम अपने जांच में पाते है कि अंगुठे की छाप के बाद भी जिस पर स्पष्ट रूप से लेखन पाया गया था उस पर कुछ और वाक्य लिखे गये थे। यह स्पष्ट रूप से इस दृष्टिकोण को विश्वास दिलाता है कि अंगुठे की निशानी एक खाली कागज पर प्राप्त की गई होगी और जल्दबाजी में सामग्री को बाद में भरा गया था।

32. उपरोक्त विश्लेषण से, हम तथाकथित कथन को वास्तव में मृतक द्वारा आ. सा. 20 को दिए गए कथन के रूप में मानने के लिए इच्छुक नहीं है। किसी भी मामले में, इसे मृत्यु कालिन कथन के रूप में नहीं लिया जा सकता है, विशेष रूप से अभियोजन पक्ष के अन्य साक्षीगण द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आलोक में। हम अपीलार्थियों के अधिवक्ता द्वारा किये गए निवेदन में बल पाते हैं। प्रदर्श पी.28 कानूनी रूप से प्रशिक्षित मस्तिष्क द्वारा बनाया गया प्रतीत होता है। मृतक हुकुम सिंह केवल हस्ताक्षर करना जानता हैं, इस तथ्य को छोड़ दें कि उन्होंने अपने अंगूठे का निशान लगाया था, जो उन्हें लगी चोटों के कारण संभव हो सकता था। कथन को पढ़ने से स्पष्ट रूप से पता चलेगा कि एक कानूनी दिमाग काम कर रहा था, क्योंकि मृतक को एक सामान्य उद्देश्य और सामान्य आशय के बीच का अंतर पता नहीं हो सकता है। कथन में दूसरों को भी विशेष रूप से उन कारणो से शामिल नहीं किया गया है जिनके बारे में हम नहीं जानते हैं छोड़े गये व्यक्तियों को उसी अन्वेषण अधिकारी द्वारा साक्षीगण के रूप में दिखाया गया था।

<u>मृत्यु कालिन कथन</u>–

33. आ.सा.20 द्वारा आत्यन्तिक रूप कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया गया है कि उन्होंने अपनी पहली रिकॉर्डिंग के बाद भी मजिस्ट्रेट या डॉक्टर की सेवाओं का उपयोग क्यों नही किया है। हम पहले ही इस तथ्य पर चर्चा कर चुके हैं कि उसने अभिसाक्ष्य दिया था कि कथन एक बार फिर दर्ज किया गया था, जो हालांकि अभिलेख का हिस्सा नहीं था। यदि मृतक हुकुम सिंह इतनी बुरी तरह से घायल हो गया था, और इसलिए अस्पताल में भर्ती होने के कुछ दिनों के भीतर उसकी मृत्यु हो गई, तो आ.सा.20 को मजिस्ट्रेट की उपस्थिति में कथन दर्ज करने और विधिवत प्रमाणित करने से किसी ने नहीं रोका। अप्रतिरोध्य निष्कर्ष जिस पर हम पहले से ही पहुंच चुके है कि मृतक एक कथन देने के लिए पर्याप्त होश की स्थिति में नहीं था, और यही कारण है कि निशानी अंगूठा

बाद में लिया गया, और फिर एक कथन बनाया गया था। अन्वेषण अधिकारी द्वारा मृत्यु कालिन कथनों को दर्ज करने के मुद्दे पर, हम मुन्नू राजा और एक अन्य बनाम मध्य प्रदेश राज्य (1976) 3 एस.सी.सी. 104 में इस न्यायालय के निर्णय को दोहराना चाहते है :

"11. हालाँकि, हम बंद करने से पहले उल्लेख कर सकते हैं कि उच्च न्यायालय को तीसरे मृत्यु कालिन कथन पी–2, जिसे कहा जाता है कि मृतक ने अस्पताल में बनाया था पर कोई भरोसा नहीं रखना चाहिए था। अन्वेषण अधिकारी जिसने दर्ज किया कि कथन में निस्संदेह डॉक्टर को मौजूद रखने की सावधानी बरती गई थी और ऐसा प्रतीत होता है कि बयान दर्ज किए जाने के समय मृतक के कुछ दोस्त और रिश्तेदार भी मौजूद थे। लेकिन, अगर अन्वेषण अधिकारी को लगता कि बहादुर सिंह की हालत खराब है, तो उसे मृत्यु कालिन कथन दर्ज करने के लिए मजिस्ट्रेट की सेवाएं लेनी चाहिए थीं। अन्वेषण अधिकारी स्वाभाविक रूप से अन्वेषण की सफलता में रुचि रखते हैं और अन्वेषण के दौरान स्वयं अन्वेषण अधिकारी द्वारा मृत्यु कालिन कथन दर्ज करने की प्रथा को प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए। इसलिए हमने अस्पताल में दर्ज किये गये मृत्यु कालिन कथन प्रदर्श पी. 2 को अपने विचार से बाहर कर दिया है।"

इस न्यायालय ने झारखंड राज्य बनाम शैलेंद्र कुमार राय 2022 एस. सी. सी. ऑनलाइन एससी 1494 में टिप्पणी की :

"45. इस आशय का कोई नियम नहीं है कि जब मजिस्ट्रेट के बजाय एक पुलिस अधिकारी द्वारा मृत्यु कालिन कथन दर्ज किया जाता है तो यह अस्वीकार्य है। यद्यपि एक मृत्यु कालिन कथन आदर्श रूप से एक मजिस्ट्रेट द्वारा दर्ज की जानी चाहिए यदि संभव हो, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि पुलिस कर्मियों द्वारा दर्ज मृत्यु कालिन कथन केवल उसी कारण से अस्वीकार्य हैं। यह मुद्दा कि क्या पुलिस द्वारा दर्ज की गई मृत्यु कालिन कथन स्वीकार्य है, प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने के बाद तय किया जाना चाहिए।"

परीक्षण पहचान परेड :

34. यह पाकर कि प्रदर्श पी–28 पर विश्वास नहीं किया जा सकता है, हम यह मानने के लिए इच्छुक हैं कि चश्मदीद साक्षीगणों के माध्यम से अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य भी विश्वास योग्य नहीं है। साक्षीगण उस आरोपी का नाम बताने में असमर्थ हैं जिस पर

हम कुछ नहीं कहना चाहते हैं। हालाँकि, उन्होंने न्यायालय में पहली बार 2 से 3 साल बाद ही आरोपी की पहचान की है। हम एक परीक्षण पहचान परेड के साक्ष्यिक मूल्य के बारे में काफी सचेत हैं। निश्चित रूप से इस तरह के मामले में ऐसा किया जाना चाहिए था। हालांकि एक परीक्षण पहचान परेड साक्ष्य का एक ठोस हिस्सा नहीं है, कभी–कभी, यह चश्मदीद साक्षीगणों के कथनों को अधिक विश्वसनीयता देकर अभियोजन पक्ष के मामले को मजबूत करता है, जिसकी हमें घोर कमी लगती है।

इस न्यायालय ने **गिरीसन नायर और अन्य बनाम केरल राज्य, (2023) 1 एस. सी. सी. 180,** में अभिनिर्धारित किया

28. हम शुरूआत में इस बात पर ध्यान दें सकते हैं कि अभियोजन पक्ष द्वारा पूछताछ किए गए चश्मदीद साक्षीगणों ने दंगों में भाग लेने वाले और सार्वजनिक संपत्ति के विनाश में शामिल आरोपीगणों के नाम या पहचान नहीं बताई थी। इसलिए, आई.ओ. (आ.सा.84) को अनिवार्य रूप से एक टी.आई.पी. का संचालन करना पड़ा। टी.आई.पी. आयोजित करने का उद्देश्य तीन प्रकार से है। सबसे पहले, साक्षीगण को स्वयं को संतुष्ट करने में सक्षम बनाना कि जिस आरोपी पर उन्हें संदेह हैं, वह वास्तव में वही है जिसे उन्होंने अपराध के संबंध में देखा था। दूसरा, अन्वेषण अधिकारियों को संतुष्ट करना कि संदिग्ध वास्तविक व्यक्ति है जिसे साक्षीगणों ने उक्त घटना के संबंध में देखा था। तीसरा, शुरूआती प्रभाव के आधार पर गवाहों की स्मृति का परीक्षण करना और अभियोजन पक्ष को यह तय करने में सक्षम बनाना कि क्या उन सभी या किसी को अपराध के चश्मदीद साक्षी के रूप में उद्धृत किया जा सकता है। (मुल्ला बनाम यू.पी. राज्य)। मुल्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 3 एस.सी.सी. 508, पैरा 44,45 और 55 (2010) 2 एस. सी.सी. (सी. आर.आई.) 1150।

29. टी.आई.पी. पुलिस द्वारा जाँच के चरण से संबंधित है। यह आश्वस्त करता है कि अन्वेषण सही दिशा में आगे बढ़ रही है। यह प्रज्ञा का एक नियम है जिसका उन मामलों में पालन किया जाना आवश्यक है जहां आरोपी साक्षी या शिकायतकर्ता को नहीं जानता है। (मटरू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)। मटरू बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2019) 2 एस.सी.सी. 75, पैरा 17 1971 एस.सी.सी. (आपराधिक) 391, मूल्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य। मुल्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य, (2010) 3 एस.सी.सी. 508, पैरा 41 और 43 (2010) 2 एस.सी.सी (आपराधिक) 1150, और सी. मुनियप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य। सी. मुनियप्पन बनाम तमिलनाडु राज्य, (2010) 9 एस.सी.सी 567 पैरा 42 : (2010) 3 एस.सी.सी

(आपराधिक) 1402] । साक्ष्य विधि की धारा 9 के तहत टी.आई.पी का साक्ष्य स्वीकार्य है। हालाँकि, यह साक्ष्य का एक ठोस हिस्सा नहीं है। इसके बजाय, इसका उपयोग विचारण के समय न्यायालय के समक्ष साक्षीगणों द्वारा दिए गए साक्ष्य की पुष्टि करने के लिए किया जाता है। इसलिए टी.आई.पी., भले ही आयोजित हो, सभी मामलों में विश्वसनीय साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। जिसके आधार पर किसी आरोपी की दोषसिद्धी की जा सकती है। (हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम लेख राज) [हिमाचल प्रदेश राज्य बनाम लेख राज, (2000) 1 एस.सी.सी. 247, पैरा 3 : 2000 एस.सी.सी (आपराधिक) 147] और सी. मुनियप्पन बनाम टी.एन राज्य। [सी. मुनियप्पन बनाम टी. एन. राज्य, (2010) 9 एस.सी.सी. 567, पैरा 42 : (2010) 3 एस.सी. सी. (आपराधिक) 1402])।

"30. यह अन्वेषण एजेंसी और आरोपी दोनों के लिए बहुत महत्वपूर्ण बात है और न्यायाधीश के उचित प्रशासन के लिए एक विशेषाधिकार है कि आरोपी की गिरफ्तारी के बाद एक टी.आई.पी. को बिना टाले और अनुचित देरी के बिना आयोजित किया जाता है। यह परीक्षण पहचान परेड से पहले साक्षीगणों को आरोपी को दिखाए जाने की संभावना को समाप्त करने के लिए आवश्यक हो जाता है। यह आरोपी की एक बहुत ही सामान्य अभिवाक है और इसलिए, अभियोजन पक्ष को यह सुनिश्चित करने के लिए सतर्क रहना होगा कि इस तरह के आरोप लगाने की कोई गुंजाइश न हो। हालाँकि, यदि परिस्थितियाँ नियंत्रण से बाहर हैं और कुछ देरी होती है, तो इसे अभियोजन पक्ष के लिए घातक नहीं कहा सकता है। लेकिन कारण दिए जाने चाहिए कि देरी क्यों हुई (मुल्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य)। (मुल्ला बनाम उत्तर प्रदेश राज्य,) (2010) 3 एस.सी.सी. 508, पैरा 45 : (2010) 2 एस.ीसी. (आपराधिक) 1150, और सुरेश चंद्र बहरी बनाम बिहार राज्य (सुरेश चंद्र बहरी बनाम बिहार राज्य, 1995 सप्लीमेंट (1) एस.सी.सी 80 : 1995 एस.सी.सी. (आपराधिक) 60।

<u>भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 149 :</u>

35. साक्षीगण स्पष्ट रूप से आरोपी पक्ष के व्यक्तियों के एक बड़े समूह की उपस्थिति के बारे में बताते हैं। वास्तव में साक्ष्य इस आशय का है कि उन्होंने भी घटना में भाग लिया था। भा.दं.सं. की धारा 149 की प्रयोज्यता से जुड़े मामले में, न्यायालय की ओर से थोड़ी और जांच की आवश्यकता है क्योंकि अपराध करने वाले वास्तविक आरोपी के साथ व्यक्तियों को फंसाने की प्रवृत्ति हो सकती है। न्यायालयों को ऐसे मामलों में साक्ष्य की जांच

करते समय बहुत सावधानी बरतनी होगी। इस मामले में हम पाते हैं कि आरोपी व्यक्तियों को भा.दं.सं. की धारा 149 के तहत फंसाना असुरक्षित होगा, जो स्पष्ट रूप से प्रतिनिधिक दायित्व के एक तत्व से संबंधित है, जैसा कि इस न्यायालय द्वारा **अरविंद कुमार (उपरोक्त),** 21 में अभिनिर्धारित किया गया है।

''धारा 149 का क्षेत्र''

50. संहिता की धारा 149 एक सामान्य उद्देश्य से संबंधित है। इस प्रावधान को आकर्षित करने के लिए इस बात का साक्ष्य होना चाहिए कि सामान्य उद्देश्य के साथ एक जमाव विधि विरूद्ध बन गई है। सामूहिक या प्रतिनिधिक दायित्व की अवधारणा को इस प्रावधान में विधि विरूद्ध जमाव के एक सदस्य द्वारा किए गए अपराध को सामान्य उद्देश्य वाले अन्य लोगों के लिए अपराध बनाकर लाया जाता है। यह सामान्य उद्देश्य को साझा करना है जो एक द्वारा किए गए अपराध को दूसरे सदस्यों की ओर आकर्षित करता है। इसलिए, एक जमाव में केवल उपस्थिति एक अपराध नहीं होगी, यह तब अपराध बन जाता है जब जमाव विधि विरूद्ध होता है। यह एक अपराध कारित करने का सामान्य उद्देश्य है है जिसके परिणामस्वरूप उक्त अपराध किया जाता है। इसलिए, हालांकि यह एक व्यक्ति द्वारा किया जाता है, एक अपराध करने के उनके उद्देश्य में समानता के कारण इसे दूसरों पर भी लागू करके एक काल्पनिक कहानी बनाई जाती है। इस प्रकार, यह अभियोजन पक्ष को एक आवश्यक संख्या के साथ जमाव के अस्तित्व, सभी के लिए सामान्य उद्देश्य, उद्देश्य विधि विरूद्ध होने और ऐसे एक सदस्य द्वारा किए गए अपराध जैसे कारकों को साबित करना है। न्यायालयों को भा.दं.सं. की धारा 149 के तहत आरोपित आरोपी के मामले को निपटाने के दौरान अधिक चौकस और सतर्क रहना होगा, क्योंकि इसमें एक काल्पनिक कहानी शामिल है। इसलिए, यह साबित करने के लिए अभियोजन पक्ष पर उच्च स्तर की जिम्मेदारी डालने की आवश्यकता है कि अपराध का आरोपित व्यक्ति भा.दं.सं. की धारा 149 के तहत दूसरों द्वारा किए गए अपराध के लिए दंडित होने के लिए उत्तरदायी है। उपरोक्त पहलू को नियंत्रित करने वाले सिद्धांत पर इस न्यायालय द्वारा रणजीत सिंह बनाम पंजाब राज्य, (2013) 16 एस. सी. सी. 752 में ध्यान दिया गया है :

35. बलादीन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [ए. आई. आर 1956 एस. सी. 181 : 1956 सी. आर. एल. जे. 345, उन प्रारंभिक मामलों में से एक था जिसमें इस न्यायालय द्वारा भा.दं.सं. की धारा 149 पर विचार किया गया था। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किसी जमाव में केवल उपस्थिति किसी व्यक्ति को विधि विरूद्ध

जमाव का सदस्य नहीं बनाती है, जब तक कि यह नहीं दिखाया जाता है कि उसने कुछ ऐसा किया था या करने में चूक की थी जो यह दर्शाता है कि वह विधि विरूद्ध जमाव का सदस्य था या जब तक कि मामला भा.दं.सं. की धारा 142 के तहत नहीं आता है। परिणामस्वरूप, यदि किसी परिवार के सभी सदस्य और गाँव के अन्य निवासी घटना स्थल पर इकट्ठा होते हैं, तो ऐसे सभी व्यक्तियों को विधि विरूद्ध जमाव के सदस्यों के रूप में वास्तव में दोषी नहीं ठहराया जा सकता है। ऐसे सभी मामलों में अभियोजन पक्ष को यह दिखाने के लिए साक्ष्य पेश करना होगा कि किसी विशेष आरोपी ने यह स्थापित करने के लिए कुछ स्पष्ट कार्य किया था कि वह विधि विरूद्ध जमाव का सदस्य था। इसके लिए प्रत्येक व्यक्ति के मामले की जांच की आवश्यकता होगी ताकि केवल वे दर्शक जो अभी–अभी सभा में शामिल हुए थे और जो इसके उद्देश्य से अनजान थे, उन्हें विधि विरूद्ध जमाव के सदस्यों के रूप में चिन्हित नहीं किया जा सके।

36. बालादीन [ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 181 : 1956 सी. आर. आई. एल. जे. 345, मामले में की गई टिप्पणियाँ को मसाल्ती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में माना गया था। [ए. आई. आर 1965 एस. सी. 202 : (1965) 1 सी. आर. आई. एल. जे. 226, जहाँ इस न्यायालय ने समझाया कि ऐसे मामले जिनमें वे व्यक्ति जो केवल निष्क्रिय साक्षीगण हैं और जिज्ञासा से जमाव में शामिल हुए थे, जमाव के सामान्य उद्देश्य को साझा किए बिना एक अलग आधार पर खड़ा था अन्यथा यह साबित करना आवश्यक नहीं था कि व्यक्ति ने कुछ अवैध कार्य किया था या जमाव के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में कुछ चूक का दोषी था, इससे पहले कि उसे भा.दं.सं. की धारा 149 की मदद से जमाव के किसी अन्य सदस्य द्वारा किए गए कार्य के परिणामों के साथ जोड़ा जा सके। इस संबंध में निम्नलिखित अंश उपयुक्त हैः(मसाल्टी मामला [ए. आई. आर. 1965 एस. सी. 202रू(1965) 1 सी.आर.एल.जे. 226,, ए. आई. आर. पी.211, पैरा 17)

"17. ऐसे मामले में यह निर्धारित करने के लिए महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या जमाव में पांच या अधिक व्यक्ति शामिल थे और क्या उक्त व्यक्तियों ने धारा 141 द्वारा निर्दिष्ट एक या अधिक सामान्य उद्देश्यों को पूरा किया। इस प्रश्न का निर्धारण करते समय, यह विचार करना प्रासंगिक हो जाता है कि क्या जमाव में कुछ ऐसे व्यक्ति शामिल थे जो केवल निष्क्रिय साक्षीगण थे और जमाव के सामान्य उद्देश्य को ध्यान में रखे बिना बेकार जिज्ञासा के रूप में जमाव में शामिल हुए थे। यह उस संदर्भ में है कि इस न्यायालय ने

बालादीन [ए. आई. आर. 1956 एस. सी. 181 : 1956 सी. आर. एल. जे. 345,] के मामले का अवलोकन किया और महत्वपूर्ण माना : अन्यथा विधि में यह कहना सही नहीं होगा कि किसी व्यक्ति को विधि विरूद्ध जमाव का सदस्य ठहराए जाने से पहले यह दिखाया जाना चाहिए कि उसने कोई अवैध कार्य किया था या जमाव के सामान्य उद्देश्य के अनुसरण में किसी अवैध चूक का दोषी था। वास्तव में धारा 149 यह स्पष्ट करती है कि यदि उस जमाव के सामान्य उद्देश्य के अग्रसरण में किसी विधि विरूद्ध जमाव के किसी सदस्य द्वारा कोई अपराध किया जाता है, या जैसे कि उस जमाव के सदस्यों को पता था कि उस उद्देश्य के अग्रसरण में किए जाने की संभावना है, तो प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध को करने के समय, उसी जमाव का सदस्य है, उस अपराध का दोषी है और यह इस सिद्धांत को दृढ़ता से सामने लाता है कि धारा 149 द्वारा निर्धारित सजा एक अर्थ में प्रतिनिधिक है और हमेशा इस आधार पर आगे नहीं बढ़ती है कि अपराध वास्तव में विधि विरूद्ध जमाव के प्रत्येक सदस्य द्वारा किया गया है।"

(जोर दिया गया)

37. पुनः बाजवा बनाम उत्तर प्रदेश राज्य [(1973) 1 एस. सी. सी. 714, में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि गुट–ग्रस्त समाज में हमेशा निर्दोष को भी दोषी के साथ फंसाने की प्रवृत्ति होती है, लेकिन निर्दोष की दोषी के साथ निंदा करने के जोखिम के खिलाफ एकमात्र सुरक्षा स्वीकार्य साक्ष्य पर जोर देने में निहित है जो कुछ हद तक आरोपी को फंसाता है और अदालत की अंतरात्मा को संतुष्ट करता है।

39. गुटों से घिरे ग्रामीण समुदाय में दोषियों के साथ–साथ निर्दोष लोगों को भी फंसाने की प्रवृत्ति है, विशेष रूप से जब बड़ी संख्या में हमलावर किसी अपराध में शामिल होते हैं तो यह आम जानकारी की बात है। ऐसे मामलों में साक्ष्य पक्षपातपूर्ण होना तय है, लेकिन न्यायालय केवल इसी आधार पर ऐसे साक्ष्यों को आसानी से खारिज नहीं कर सकती। तो क्या किया जाना चाहिए कि अभिसाक्ष्यों से सावधानीपूर्वक संपर्क किया जाए और न्याय की किसी भी विफलता से बचने के लिए साक्ष्य को अधिक बारीकी से जांच की जाए।

36. इस न्यायालय ने **बिनय कुमार सिंह बनाम बिहार राज्य, (1997) 1 एस. सी. सी. 283** के मामले में यह टिप्पणी की।

"**31.** साक्ष्य का कोई नियम नहीं है कि कोई भी दोषसिद्धि तब तक आधारित नहीं हो सकती जब तक कि एक निश्चित न्यूनतम संख्या में साक्षीगण ने किसी विशेष आरोपी की पहचान विधि विरूद्ध जमाव के सदस्य के रूप में नहीं की हो। यह स्वयंसिद्ध है कि साक्ष्य को गिना नहीं जाना चाहिए बल्कि केवल तौला जाना चाहिए और यह साक्ष्य की मात्रा नहीं बल्कि गुणवत्ता है जो मायने रखती है। यहां तक कि एक एकल साक्षी की गवाही, यदि पूरी तरह से विश्वसनीय है, तो एक आरोपी की पहचान एक विधि विरूद्ध जमाव के सदस्य के रूप में स्थापित करने के लिए पर्याप्त है। फिर भी, जब विधि विरूद्ध जमाव का आकार काफी बड़ा है (जैसा कि इस मामले में है) और कई व्यक्तियों ने इस घ टना को देखा होगा, तो कम से कम दो विश्वसनीय साक्षीगण पर बल्वा में एक प्रतिभागी के रूप में एक आरोपी की पहचान सुनिश्चित करने के लिए जोर देना एक विवेकपूर्ण अभ्यास होगा। मसाल्ती बनाम उत्तर प्रदेश राज्य में [ए. आई. आर 1965 एस. सी. 202:(1964) 8 एस. सी. आर. 133,] इस न्यायालय के चार न्यायाधीशों की एक पीठ ने ऐसा सूत्र अपनाया है। इसका यहां उद्धरण देना उपयोगी है।

"जहां एक न्यायालय को बड़ी संख्या में अपराधियों और बड़ी संख्या में पीड़ितों से जुड़े अपराध से संबंधित साक्ष्य से निपटना होता है, तो यह परीक्षण अपनाना सामान्य बात है कि दोषसिद्धि केवल तभी अभिनिर्धारित की जा सकती है जब दो या तीन या अधिक गवाह इसका समर्थन करें जो घटना का सुसंगत विवरण दें।"

<u>चक्षुदर्शी साक्षी की अभिसाक्ष्य –</u>

37. आ.सा. 12 के साक्ष्य पर बहुत अधिक निर्भरता रखी गई है। इस निवेदन की सराहना करने में कोई कठिनाई नहीं है कि एक घायल साक्षी को ऊंचे आसन पर रखा जाना है। हालाँकि, आ.सा. 20 द्वारा आ.सा.12 की बिल्कुल जाँच नहीं की गई है। अपने अभिसाक्ष्य में, आ.सा. 12 बार–बार इस स्थिति को स्पष्ट करता है। यदि द.प्र.सं. की धारा 161 के तहत आ.सा. 12 का बयान दर्ज किया गया है, तो उसे भी चिह्नित नहीं किया गया है। आ.सा. 20 भी एक स्तर पर उक्त तथ्य को स्वीकार करता है, हालांकि कुछ विरोधाभासों के साथ। यह हमें फिर से इस निष्कर्ष पर लाता है कि आ.सा. 12 के साक्ष्य पर भरोसा करना असुरक्षित होगा। जो एक बार फिर न्यायालय के समक्ष पहली बार आरोपी की पहचान करता है। अन्वेषण के दौरान उससे पूछताछ न करने के लिए

आत्यन्तिक रूप कोई स्पष्टीकरण नहीं है। इस प्रकार, हम पाते हैं कि आ.सा.12 के साक्ष्य पर भरोसा नहीं किया जा सकता है, विशेष रूप से भा.दं.सं. की धारा 149 के तहत आरोपों के आलोक में और जहां तक अपीलकर्ताओं का संबंध है।

38. उपरोक्त विरोधाभासों के पाये जाने पर, हमारे पास इन अपीलों को स्वीकार करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है। हम पाते हैं कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय दोनों ने विभिन्न पहलुओं पर अपना दिमाग नहीं लगाया, जैसा कि हमने ऊपर चर्चा की थी। मामले के ऐसे दृष्टिकोण में, हम अपीलार्थियों को संदेह का लाभ प्रदान करते हुए उपरोक्त निर्णयों को अपास्त करने के लिए विवश हैं।

39. अपीले स्वीकृत की जाती है और अपीलकर्ता (ढोला /ढोलाराम) को किसी अन्य मामले में आवश्यकता नहीं होने पर तुरंत रिहा करने का निर्देश दिया जाता है।

40. लंबित आवेदन, यदि कोई हों, का निपटारा कर दिया जाता है।

.न्यायमूर्ति (बी. आर. गवाई)
.न्यायमूति (एम. एम. सुंदरेश)

नई दिल्ली,
12 जनवरी, 2023

अस्वीकरण – स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक एवं कार्यालयीन प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा एवं निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ क्षेत्र धारित करेगा।